[Social Issues and Environmental Problems,Vol.3 (Iss.9:SE): Sep, 2015] ISSN- 2350-0530(O) ISSN- 2394-3629(P)
Impact Factor: 2.035 (I2OR)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i9SE.2015.3264

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

हिंदी–साहित्य में प्रकृति

आशा देवी
अदिति महाविद्यालय, बवाना, दिल्ली – विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्यकारों का प्रकृति–प्रेम सर्वविदित है। आदिकाल , मध्यकाल और आधुनिककाल सभी कालों में प्रकृ ति पर काव्य–रचनाऐं होती रहीं । प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकरप्रसादजी लिखते हैं–

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे–जहाँ निर्जन में सागर–लहरी–अंबर के कानों में गहरी–निच्छल प्रेमकथा कहती हो––तज कोलाहल की अवनि

कवि ने यहाँ मानव की शांतिप्रियता को इंगित किया है ।मानव कोलाहलप्रिय नहीं है, और न ही वह ऐसी धरती चाहता है।(सागर की लहर) और (अबंर) के रूप में प्रकृति ने भी मानव से प्रेम ही किया है ।आज विचारणीय विषय यह है कि फिर ऐसा क्या है, क्यों है, कौन है जो मानव और प्रकृति के अटूट संबंधों को तहस–नहस कर रहा है । वे कौन सी परिस्थितियाँ लगातार बनती रही हैं जो धरती विदीर्ण कर रही हैं । एक भयावह पर्यावरणीय संकट हम सब पर मँडरा रहा है । अब हमें क्या करना चाहिए ।

हम सभी जानते हैं कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति कंगन में नग की भाँति जडी है पर जब बड़ा संकट इस संस्कृति के विनाश का दिखाई दे रहा है तो ऐंसे में वैदिककाल से सँजोए हमारे जीवन–मूल्य, जो हमें प्रकृति से प्रेम करना सिखाते हैं, समाप्त हो रहे हैं वेदों की ऋचाओं में हमें अग्नि,सूर्य, चंद्र, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश और मेघों के प्रति कृतग्यता का भाव दिखाई देता है । संस्कृत–साहित्य तो प्रकृति के मनोहारी दृश्यों से भरा पड़ा है ।वहाँ प्रकृति मानव की सहचरी,सखी और उसका सर्वस्व है ।

साहित्य का उद्देश्य है––सबका हित करना । हिंदी भाषा का साहित्यकार सदैव मानव को प्रकृति से जोड़े रखता है । एक वैग्यानिक जहाँ प्रकृति को तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर समझता और समझाता है, वहीं एक साहित्यकार प्रकृति को भावना के आधार पर समझता और समझाता है । भावना के स्तर पर जुड़ा यह संबंध बेजोड़ और टिकाऊ रहता है ।मानव और प्रकृति के बीच का यह संबंध बहुत पुराना है ।

सारे विश्व में भारत ही एक ऐंसा देश है, जहाँ प्रकृति मानव की जीवन–चर्या में अनवरत घुली–मिली हुई है । यहाँ तिथियों के नाम चंद्रमा की कलाओं से जुड़े हैं । यहाँ हर पूजा–पाठ में नक्षत्र हैं, ग्रह हैं, जल–भरा कलश है,बेल–पत्र है, फूल हैं, पान हैं, सुपारी हैं, नारियल हैं, दूर्वा है,माटी है, हल्दी है, अक्षत है, पशु–पक्षी हैं, सारी प्रकृति अपनी समरसता में हमारे पर्वों , गीतों और हमारे रीति–रिवाजों में समाहित है । चंदा हमारे मामा हैं, गाय,तुलसी, धरती हमारी माँ है ,यह आकाश हमारा पिता है । नक्षत्रों को साक्षी मानकर हम व्रत रखते हैं अग्नि की साक्षी देकर हम विवाह करते हैं । कुल मिलाकर हमारा सामाजिक और पारिवारिक जीवन प्रकृति के बिना अधूरा है । हिंदी का साहित्यकार प्रकृति को प्रेरणादायिनी मानता है–

फूलों से नित हँसना सीखो, भौंरों से नित गाना
तरु की झुकी डालियों से तुम सीखो शीश झुकाना

प्रसन्नता, उल्लास, उत्साह, उमंग, गुनगुनाहट, नम्रता और अनुशासन हमें प्रकृति ही सिखाती है । वह गति है, परिवर्तन और निरंतरता उसके गुण हैं । कवि यश मालवीय लिखते हैं–

तेज हवा में
सारा जंगल गाता है
ऐंसे गाओ जैसे बादल गाता है
अपनी जड़ से जुड़ो आसमाँ छू लो भी

खुशबू बाँट रहे फूलों से फूलो भी

कवि पंत जी संध्या–सुंदरी के सौंदर्य पर मुग्ध हैं–
दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या–सुंदरी परी–सी धीरे–धीरे–धीरे
मोहन राकेश के नाटक(आषाढ़ का एक दिन) की नायिका मल्लिका आकाश में छाए नीले बादलों को देख कर कहती है–– मैं जीवन में पहली बार समझ पाई कि क्यों कोई पर्वत–शिखरों को सहलाती मेघ–मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन–मन की अपेक्षा आकाश में बनते–मिटते चित्रों से इतना मोह हो रहता है –)
धीरे–धीरे औद्योगिकरण और पूँजीवाद की आँधी ने प्रकृति और मानव के उपवन को उजाड़ना शुरु कर दिया। साहित्यकारों को चिंता हुई । जयशंकरप्रसाद जी (कामायनी) के माध्यम से मानव को सावधान करते हैं । वे कहते हैं कि उपभोक्तावादी–संस्कृति ने मानव को शक्तिहीन बना दिया है–

प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से सब की छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी

युवा कवि रविकांत लिखते हैं–

चाँद को बाहर ही छोड़ रात में अंतिम बार
घर का दरवाजा बंद करना अच्छा नहीं लगता ।

शहरों में ऊँची–ऊँची अट्टालिकाओं ने वर्ग–भेद पैदा किया , निराला जी की कविता में एक मजदूरनी धूप में पत्थर तोड़ रही है––
कोई न छायादार पेड़
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
नेपाली कवि मनप्रसाद सुब्बा लिखते हैं–
जब आज लोग शीतल–पब हाऊस में प्रवेश करते हैं
या तो एयर कंडीशनर बंकर में छिपते हैं उस वक्त
इस धरती के अति प्राचीन पर अपरिचित पुरुष व महिलाऐं
चुपचाप युद्ध लड़ रहे होते हैं गर्मी से झुलसाने वाले नात्सीवाद से
भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने जिस शहरी– जीवन को जन्म दिया वह खोखला उकताहट भरा, नीरस, प्रदूषित और संवेदनहीन है । प्रसाद जी ने इस यांत्रिकता का उल्लेख कामायनी में किया है–– श्रममय कोलाहल, पीड़ामय विकल प्रवर्तन महायंत्र का,
क्षण भर भी विश्राम नहीं है प्राण दास है क्रिया तंत्र का ।
अब मानव के पास समय नहीं है कि वह प्रकृति की सुध ले । कवि विजयसिंह की कविता दूधनदी की पंक्तियाँ–
दूधनदी को जानने वाले लोग कहाँ गए ..
वे जानते थे दूध की तरह उफनती नदी से
उनके खेतों में आती थी हरियाली.....
शहर के पुराने पुल को अपनी बाँहों में थामे
कब से लोगों के चेहरों को देख रही है दूधनदी
कि आएंगे उसके पास शहर के लोग
राजी–खुशी पूछेंगे, पूछेंगे हाल–चाल
लेकिन कोई नहीं आता
और आते भी हैं तो शहर की सारी गंदगी छोड़
उसे और मरने के लिए छोड़ जाते हैं....
डा. निर्मला शर्मा लिखती हैं–
लोग उछालते हैं कंकड़

तैराते हैं नाव कोई कागज की
फेंकते हैं पत्थर
और कुछ नहीं तो थूक ही देते हैं
बहुत कम लोग होते हैं
तंद्रित लहरों को
जो आँखों से छूते हैं
और तरंगायित हो उठती है नदी स्पर्शायित होकर.....

इस प्रकार अपने मनमानी के दुष्परिणामों से बेखबर आधुनिक मानव एक अंधी दौड़ में भागा जा रहा है । प्रकृति पर विजय पाकर वह हार गया है, अपने ही बनाए चक्र–व्यूह में घिर गया है , सभंलने का समय भी नहीं. ... कवि मनप्रसाद जी लिखते हैं–

नाव बना लो ,
कोई आकाशवाणी नहीं हुई
लेकिन वर्षा बरस रही है असमय
हम हैं कि अभी तक नाव भी नहीं बना पाए ....

साहित्यकार जगा रहा है मानव को उसकी तंद्रा से । वह हारता नहीं, और न उम्मीद खोता है । वह प्रतीक्षा करता है–

फिर मिलेगी कब दही–सी चाँदनी
डंठलों में चाँदनी कैसे भरुँ .....

कवि को विश्वास है अपनी कलम पर जो भावना की स्याही से समय के कागज पर धरती को विनाश से बचाने का मंत्र लिख देगी ।

मानव की जिजिविषा उसे हारने नहीं देगी । कवि कहता है –

मेरे पास सिर्फ शब्द हैं.. जो समय के अस्त्र हैं.....

हमारे विचार से एक साहित्यकार की शक्ति उसकी कलम ही है जो आज की दुनिया को पर्यावरणीय संकट से बचा सकती है । हमें फिर से अपनी जड़ों से जोड़ सकती है । मन, बुद्धि और क्रिया–– तीनों स्तरों पर एक साथ जुटना होगा, तभी सुखद भविष्य की कामना की जा सकती है ।

संदर्भ

1. *आषाढ का एक दिन –मोहन राकेश*
2. *संवेद पत्रिका – वर्ष –6 अंक –2–3*
3. *सहृदय पत्रिका–वर्ष–4 अंक–14*
4. *वाक् पत्रिका –वर्ष –2013 अंक–14*
5. *इंद्रप्रस्थ भारती –वर्ष –26 अंक–3*